प्रवचन-१०६, श्लोक-१३४, गाथा-९९-१००, शुक्रवार, मागशर कृष्ण १०,
दिनांक १४-१२-१९७९

नियमसार, गाथा ९९ टीका। **सकल विभाव के संन्यास की (-त्याग की) विधि कही है।** भगवान आत्मा अस्तिरूप से पदार्थ है। सत्तारूप से अस्ति धारक ध्रुव वस्तु है, उसमें विभाव नाममात्र नहीं है। आहाहा! उसमें तो एक-अनेक लिया। कहाँ गया? उत्पाद-व्यय-ध्रुव और द्रव्य-गुण-पर्याय। कलश में। उसमें धर्म में यह लिया सत् और असत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक अदयम लिया। आत्मा में ऐसे गुण भी नहीं हैं। आहाहा! उत्पाद-व्यय-ध्रुव, ऐसे भेद नहीं हैं और द्रव्य-गुण-पर्याय, ऐसे तीन भेद नहीं हैं।

मुमुक्षु : परम सत्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! ऐसी वस्तु! जिसमें के छह बोल तो कहे। यह दूसरे छह बोल। वस्तु में द्रव्य-गुण-पर्याय ऐसे तीन भेद नहीं। यह धर्म में गिना है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव और द्रव्य-गुण-पर्याय, ऐसे भेद नहीं हैं। वह तो वस्तु-वस्तु है। अभेद वस्तु है, वह दृष्टि का विषय है। बाकी सब चाहे जितने प्रकार हों, वचनमात्र अर्थात् जाननेमात्र हैं। है, ऐसा जानना, बस! आदरने की बात तो यह एक ही है। आहाहा! अभेद चीज़, द्रव्य-गुण-पर्याय के भेदरहित; उत्पाद-व्यय-ध्रुव के भेदरहित; कारक के भेदरहित... आहाहा! धर्म और गुण के भेदरहित; विकल्प, नय और ध्यानावली के भेदरहित... आहाहा! ऐसी चीज़ में सकल विभाव का त्याग है। कोई विभाव उसमें है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सब निकाल डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब निकाल डाला। सब है कहाँ? नरेन्द्र-फरेन्द्र है कहाँ? अन्दर वहाँ लड़का नहीं और लड़की भी नहीं। कोई नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पैसा, वह तो सब आत्मा की पर्याय से बाहर चीज़ रह गयी परन्तु पर्याय में जो राग और द्वेष है, वह भी कहाँ अन्दर में है? और पर्याय में भी जो द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद उपजते हैं, वे अन्दर भेद, अभेद में कहाँ हैं? उत्पाद-व्यय-ध्रुव भेद उपजे, वह भी अन्दर में कहाँ है? और कारक, धर्म और गुण, यह भी अन्दर में कहाँ है? आहाहा! इन सर्व विभाव और भेद से भिन्न चीज़ है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

सकल विभाव के संन्यास की (-त्याग की) विधि कही है। सुन्दर कामिनी,... सुन्दर स्त्री। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय। एक नहीं लिया, तीन लिये हैं। उसका द्रव्य, उसके गुण और उसकी वर्तमान पर्याय तथा **कांचन...** अर्थात् सोना। **आदि...** वह परद्रव्य, परगुण और उनकी पर्याय। इन तीन के **प्रति ममकार को मैं छोड़ता हूँ।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि होने के लिये तीन को तजता हूँ तो यह सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! ऐसी बात है। लोग फिर पुकार करते हैं। एकान्त में बेचारे कहते हैं... कि एकान्त है, ऐसा है, वैसा है। जैसा है, बापू! प्रभु! तू भी भगवान है। तेरी बातें कही जा सके ऐसी नहीं है, ऐसी अभेद चीज़ तू है। आहाहा! उसकी बातें प्रभु होती है।

उस अभेद चीज़ में सर्व विभाव का त्याग, उसमें तो द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद का भी त्याग, उत्पाद-व्यय-ध्रुव वस्तु है, उन तीन भेद का भी त्याग। आहाहा! विकल्प, नयसमूह का विकल्प और ध्यानावली अर्थात् शुद्धता की धारा बहे। आत्मा में द्रव्य के आश्रय से शुद्धता की धारा बहे। वह भी द्रव्य में कहाँ है? सबसे रहित प्रभु तू है। आहाहा! समझ में आया? देखो! वह छोटा बालक तुम्हारे पास बैठा है। उसे सुनने का कितना प्रेम है! बहुत बार आता है। बहुत सुनने आता है। इस प्रकार सुने तो सही, समझे तो सही, बापू! यह क्या है? प्रभु! तू आत्मा है न! उस आत्मा की बात यहाँ चलती है, नाथ! आहाहा!

कहते हैं, **सुन्दर कामिनी,...** बहुत रूपवान ऐसी स्त्री हो, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय तो उसमें हैं, प्रभु! आहाहा! उसके ममकार का त्याग है। वह मेरी नहीं। आहाहा! उस स्त्री का द्रव्य मेरा नहीं। स्त्री के अन्दर द्रव्य का ज्ञानगुण जो है, वह मेरा नहीं, उसकी वर्तमान पर्याय विकृत या अविकृत हो, वह मेरी नहीं, मुझमें नहीं, उसमें मैं नहीं। आहाहा! मैं उस ममकार को तजता हूँ। आहाहा! यह वाणी में बात नहीं, बापू! उसे मैं तजता हूँ। मेरा भगवान अभेद पूर्णानन्द से भरपूर, उसका आश्रय लेकर मैं इसे छोड़ता हूँ, क्योंकि उसे पर की कोई अपेक्षा नहीं है। आहाहा!

अभी यहाँ तो कहे, व्यवहाररत्नत्रय साधन। जयसेनाचार्य की टीका में यह बहुत आता है। अमृतचन्द्राचार्य की टीका में कठिन आता है, गम्भीर आता है; इसलिए जयसेनाचार्य की टीका में बहुत व्यवहार साधन आता है। वह तो उसका ज्ञान कराया है। वे आचार्य हैं, उनका विरोध नहीं है। वे आचार्य हैं, ज्ञानी हैं, भाई! परन्तु उनका सच्चा है और अमृतचन्द्राचार्य

का खोटा है, ऐसा नहीं है। वे आचार्य हैं। उनके कथन की शैली है। साधक जहाँ राग से भिन्न पड़कर, प्रज्ञा के साधन द्वारा भिन्न पड़कर साध्य को साधता है, तब साधकपना प्रगट हुआ, तब राग के निमित्त और आरोपपने से साधकपने का आरोप दिया – ऐसा है, प्रभु! उल्टी-सीधी बात करे तो विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है। वाद और विवाद से कुछ पता लगे, ऐसा नहीं है। ऐसी चीज़ है। आहाहा! और तू भी भगवान है, प्रभु! चाहे जिस प्रकार उल्टी बात कर। वह तो सब पर्याय में है। वस्तु में तो तू भगवान है, परमेश्वर है। आहाहा! तेरी ओर दु:ख की दृष्टि से तुझे न देख। तू अन्दर भगवान आत्मा है। आहाहा!

जैसे पर्याय अपनी पर्यायबुद्धि गयी है, वह पर को पर्यायबुद्धिरहित द्रव्य से देखता है। पर्याय का तो ज्ञान करता है। द्रव्य का आदर करता है। द्रव्य साधर्मी है। आहाहा! भगवान आत्मा ऐसा अन्दर है, वह साधर्मी है। आहाहा! पर्याय को जाने... आहाहा! यहाँ कहते हैं कि इस सब **ममकार को मैं छोड़ता हूँ। परमोपेक्षालक्षण से लक्षित...** अब क्या कहते हैं ? देखो! **परमोपेक्षालक्षण से लक्षित निर्ममकारात्मक आत्मा...** निर्ममकारात्मक आत्मा। **निर्ममत्वमय;..** स्वरूप आत्मा। नीचे। **निर्ममत्वमय; निर्ममत्वस्वरूप।** परन्तु इस निर्ममत्वस्वरूप की व्याख्या क्या ? आहाहा! एक ओर ममकार तजता हूँ और निर्ममकार... उस निर्ममकार का अर्थ पर की उपेक्षा करनी है। है ?

परमोपेक्षालक्षण से लक्षित... परम उपेक्षालक्षण से लक्षित। छोड़ता हूँ, यह भी अपेक्षा से है। तो उस **परमोपेक्षालक्षण से लक्षित...** है। आहाहा! अब इसके साथ चर्चा करो। यह चर्चा, बापू! भगवान! तेरी दृष्टि अन्दर न झुके, तब तक चर्चा क्या करना ? भाई! यह वस्तुस्थिति ऐसी है, वहाँ... आहाहा! क्या कहा ? **निर्ममकारात्मक आत्मा...** परन्तु निर्ममकारात्मकस्वरूप आत्मा कैसा ? निर्ममत्व आत्मस्वरूप कैसा ? आहाहा! उन परद्रव्य के द्रव्य-गुण-पर्याय कहे न ? उन्हें छोड़ना। यह कैसा है ? वह तो **परमोपेक्षालक्षण से लक्षित...** है। जिसे भेद का भी लक्ष्य नहीं। परमोपेक्षालक्षण। नय के विकल्प, रागादि के विकल्प से परम अपेक्षारहित वह तो है। आहाहा! अब ऐसी बात! अन्दर समझकर अनन्त मोक्ष पधारे हैं। इसमें न समझ में आये, ऐसा नहीं है, प्रभु! ऐसा नहीं करना। न समझ में आये, न जँचे (ऐसा नहीं)। यह श्रद्धा में तो ले। जँच सके और परमात्मा हो सकता हूँ। आहाहा! मैं यही हूँ। दूसरी चीज़ मैं नहीं हूँ। आहाहा! है ?

परमोपेक्षालक्षण से लक्षित... क्या ? **निर्ममकारात्मक आत्मा...** ममतारहित, पर की ममतारहित ऐसा जो भगवान, उसका लक्षण क्या ? कि परमोपेक्षा लक्षण। परम उपेक्षा... आहाहा ! तजने की बात भी इस अपेक्षा से कहते हैं। आहाहा ! परमोपेक्षा से तो अभेद अखण्डानन्द नाथ का अवलम्बन जहाँ लिया, वह परमोपेक्षालक्षण से लक्ष्यवाला प्रभु है। पर की कोई अपेक्षा रखे, ऐसा वह आत्मा नहीं है। व्यवहार होवे तो निश्चय होता है और व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसे इस लक्षणवाला प्रभु नहीं है। आहाहा ! ऐसा है, प्रभु !

परमोपेक्षा... अकेली उपेक्षा नहीं। **परमोपेक्षालक्षण से लक्षित...** ऐसे लक्षण से लक्ष्य में ज्ञात होनेयोग्य। **परमोपेक्षालक्षण से...** जाननेयोग्य। आहाहा ! इस प्रकार वह ज्ञात हो, ऐसा है। **परमोपेक्षालक्षण से...** किसी भेद की, किसी नय के विकल्प की, किसी षट्कारक के भेद की, नय के विकल्प की; पर की तो बात क्या करना ? आहाहा ! परनिमित्त की तो बात क्या करना ? निमित्त होता है, निमित्त है, परन्तु उसकी अपेक्षा से आत्मा का अनुभव होता है, यह बात बिल्कुल झूठ है। निमित्त है, अनन्त निमित्त हैं। वस्तु है, वह वस्तु क्या है ? जिस समय परमोपेक्षालक्षण से लक्षित आत्मा को जाना, उस समय निमित्त से जाना है, ऐसा नहीं है। आहाहा !

ऐसे **आत्मा में स्थित रहकर...** निर्ममत्व। इस ओर ममता तजकर तथा इस ओर निर्ममत्व परमोपेक्षालक्षण से लक्षित निर्ममत्वभाव, परमोपेक्षालक्षणवाला निर्ममत्वभाव, उसमें स्थित रहकर। उस आत्मा में स्थित रहकर। आहाहा ! भाषा तो सादी है परन्तु भाव तो बहुत गहरे भरे हैं। **तथा आत्मा का अवलम्बन लेकर,...** स्थित रहकर अर्थात् आत्मा को अवलम्बन कर, ऐसा। अवलम्बन आत्मा एक अभेद का। आहाहा ! एक समय में पूर्ण अभेद चीज़ जो पड़ी है, त्रिकाल निरावरण अखण्ड एक—ऐसा जो परम आलम्बन, उसे —आत्मा को अवलम्बकर, उस आत्मा का अवलम्बन लेकर, पर की अपेक्षा छोड़कर... आहाहा ! रागादि विकल्प, नय आदि विकल्प, कारकों के विकल्पों को छोड़कर परमोपेक्षालक्षण लक्षित प्रभु है, उसे उसमें रहकर, **आत्मा का अवलम्बन लेकर, संसृतिरूपी स्त्री के सम्भोग से...** संसाररूपी स्त्री अर्थात् परिणति, शुभाशुभ रागरूपी परिणति... आहाहा ! शुभ और अशुभराग उसरूप परिणति / स्त्री। उसके संग से **उत्पन्न सुख**-

दुःखादि... आहाहा! यह डाला न? शुभ और अशुभ। शुभ से सुख लगता है और अशुभ से दुःख लगता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

शुभाशुभभाव **संसृतिरूपी स्त्री के सम्भोग से उत्पन्न सुख-दुःखादि अनेक विभावरूप परिणति...** यह सुख-दुःख का अर्थ शुभ-अशुभभाव। शुभभाव, वह दुःख है और अशुभभाव, वह भी दुःख है। आहाहा! सुख-दुःखादि। रति, उत्साह पर में सब भाव विकारी है। परद्रव्य के गुण और पर्याय को मैं तजता हूँ, वहाँ अकेला भेद लिया। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को ग्रहण करता हूँ, ऐसा नहीं लिया। यहाँ तो परमोपेक्षालक्षणवाला लक्षित आत्मा को ग्रहण करता हूँ, उसका अवलम्बन करता हूँ। आहाहा! लोगों को ऐसा कठिन लगता है। अपूर्व, कभी सुना नहीं हो और घर में बैठने का टाईम न मिले और निवृत्ति से अन्दर मिलान करना, इसका समय नहीं मिले। संसार के काम के कारण निवृत्त नहीं है। आहाहा! दुकान में बैठा हो तो पूरे दिन होली सुलगती होती है। यह ग्राहक आया और इसे दिया, इसे लिया, यह आमदनी हुई, यह ऐसा हुआ। पूरी होली सुलगती है। आहाहा! ऐसे सब भावों को तजकर... आहाहा!

निर्ममत्वस्वरूप ऐसा जो परमोपेक्षालक्षण से लक्षित हुआ, ऐसे आत्मा को अवलम्ब कर, उसमें स्थित रहकर वह शुभाशुभरूपी परिणति, शुभाशुभरूपी परिणति के संग से उत्पन्न हुआ सुख-दुःख। शुभ है, वह भी दुःख और अशुभ है, वह भी दुःख। इस **सुख-दुःखादि अनेक विभावरूप परिणति को मैं परिहरता हूँ।** आहाहा! एक-एक लाईन और एक-एक पंक्ति में कितना भरा है! यह तो अध्यात्म का ग्रन्थ है। द्रव्यानुयोग का है, ऐसा करके निकाल डाला। अरे! प्रभु! तीनों ही अनुयोगों में भी यही कहा है। आहाहा! कथानुयोग में भी क्रमबद्ध की ही बात की है। चरणानुयोग में भी क्रमबद्ध व्रत और नियम के परिणाम की ही बात की है और कर्म प्रकृति करणानुयोग में भी अमुक गुणस्थान में यह उदय, और अमुक गुणस्थान में यह सत्ताएँ, यह भी क्रमबद्ध है, उसकी ही बात की है। चारों ही अनुयोगों में इस स्थिति का वर्णन है और चारों ही स्थिति के वर्णन में वहाँ से हटकर स्व में आना, यह वर्णन है क्योंकि चारों ही अनुयोगों का सार वीतरागता है। १७२ गाथा पंचास्तिकाय की १७२ गाथा। चारों अनुयोगों का सार वीतरागता है। ऐसा नहीं कि दूसरे अनुयोग राग को करे और राग से लाभ हो, ऐसा कहे और द्रव्यानुयोग में लाभ नहीं, ऐसा

कहे—ऐसा नहीं है, भाई! तुझे खबर नहीं है। यह करणानुयोग कर्म हो, ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है, ऐसी भाषा आवे, तो वहाँ भी व्यवहार की भाषा है। ज्ञान की पर्याय स्वयं से हीन होती है, तब उसे निमित्त कहा जाता है। आहाहा! और वह भी समझने के लिये उसे छोड़कर, हीन को छोड़कर अधिक वस्तु है, उसका अवलम्बन लेने के लिये (ऐसा कहा जाता है)। वह हीन और उसमें निमित्त है, उसका ज्ञान कराया है। आहाहा! उसमें खड़ा रहना, ऐसी बात नहीं की है। आहाहा!

उसका सार वीतरागता कहा है। व्रत करना, उनके अतिचार टालना, यह बात बहुत आती है परन्तु उसका अर्थ अन्दर वीतरागता प्रगट करना, यह सार है। आहाहा! कर्मप्रकृति में यह, चरणानुयोग में यह, कथानुयोग में यह है। ऐसा कहे, यह तो द्रव्यानुयोग की ही बात है, परन्तु द्रव्यानुयोग की दृष्टि से दूसरे अनुयोग में क्या कहना है, इस दृष्टि से बैठता है, तब चारों ही अनुयोग की तह बैठती है, वरना उनकी तह नहीं बैठती। आहाहा! है?

ऐसे सुख-दुःख की कल्पना जो है, शुभ-अशुभभाव। वह शुभभाव, वह सुख की कल्पना। सुख-दुःख। वह **सुख-दुःखादि अनेक विभावरूप परिणति को मैं परिहरता हूँ।** इसका नाम प्रत्याख्यान है। इसका नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा! सुनना कठिन लगता है।

मुमुक्षु : आप तो सरल करके समझाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा तो ऐसी है। आहाहा! इसे ऐसा लगता है कि यह कैसे पकड़ में आये? कैसे पकड़ में आये क्या? यह पकड़ में आये, ऐसा ही यह है। आहाहा! न पकड़ में आये, ऐसा इसमें है ही नहीं। आहाहा! यह कहते हैं। **विभावरूप परिणति को मैं परिहरता हूँ।**

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद्अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १०४ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:— यह समयसार के पुण्य-पाप के अधिकार में १०४ श्लोक है।

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल,
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रति-चरित-मेषां हि शरणं,
स्वयं विन्दन्त्येते परम-ममृतं तत्र निरताः॥

आहाहा! **शुभ आचरणरूप कर्म...** दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि। **शुभ आचरणरूप कर्म...** आहाहा! **अशुभ आचरणरूप कर्म...** परिणाम की बात की है। शुभ-अशुभ परिणाम दोनों। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि भाव शुभ हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग यह अशुभ है। ये शुभ-अशुभ दोनों भाव, यह आचरणरूप कर्म अर्थात् कार्य। **ऐसे समस्त कर्मों का निषेध किया जाने पर...** अरे! प्रभु! तुम सबका निषेध करते हो तो मुनि को शरण क्या? आहाहा! तुम तो शुभभाव को दुःख कहकर निषेध करते हो, अशुभभाव को दुःख कहकर निषेध करते हो। शुभभाव को जहर कहकर छुड़ाना चाहते हो। आहाहा! क्या परन्तु तब अब उन्हें रहना कहाँ? करना क्या? यह इतना पर्याय में भासता है, इसलिए उन्हें यह छोड़ने का कहा परन्तु अब रहना कहाँ। आहाहा!

'**निषिद्धे सर्वस्मिन्**' तुमने तो सर्व कर्म का निषेध किया। पंच महाव्रत के परिणाम भगवान कहते हैं कि मेरी भक्ति, मुझे याद करना, स्मरण करना, वह सब शुभभाव है, उसका आप निषेध करते हो, वह धर्म नहीं है। आहाहा! वह **शुभ आचरणरूप...** आचरणरूप कहा है न? शुभ प्रकृति नहीं ली। शुभ आचरण। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह आचरण-परिणाम है न? वह **शुभ आचरणरूप कर्म और अशुभ आचरणरूप कर्म...** क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि। **ऐसे समस्त कर्मों का निषेध किया जाने पर...** ऐसे समस्त विकार के कार्य जो हैं, उनका **निषेध किया जाने पर और इस प्रकार निष्कर्म अवस्था वर्तने पर,...** इस प्रकार कर्म राग-द्वेषरूपी, कर्म अर्थात् कार्य, ऐसी अवस्था से रहित **निष्कर्म अवस्था वर्तने पर,...** उस कर्म की अवस्था छोड़ने पर निष्कर्म अवस्था प्रवर्तने पर... आहाहा!

एक ओर छोड़ा तथा एक ओर ग्रहण किया। ममत्व को छोड़ा और निर्ममत्व ऐसे आत्मा को ग्रहण किया। ऐसी **अवस्था वर्तने पर, मुनि कहीं अशरण नहीं हैं;...** यह शुभ-अशुभ छुड़ाया, इसलिए अब उन्हें कोई शरण नहीं है, ऐसा नहीं है। शरण तो वह परमात्मा स्वयं है। आहाहा! विरोध बहुत आता है। ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता। इनकार किया है, ऐसा कहते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक में इनकार किया है। काललब्धि कोई वस्तु नहीं है। ऐई! यह शब्द डाला है। वह किस अपेक्षा से कहते हैं? काललब्धि और भवितव्यता कोई

वस्तु नहीं है। जिस समय में हो, वह काललब्धि और उसका भाव, वह भवितव्यता। काललब्धि अर्थात् तो काल में ही होता है, वह कोई वस्तु नहीं, ऐसा वे कहते हैं। एक व्यक्ति का बड़ा लेख आया है। बहुत विपरीत है, बहुत विपरीत। क्या हो? पढ़नेवाले वह पढ़ें। कैलाशचन्दजी का विरोध आया है। कैलाशचन्दजी ऐसा कि निन्दा ही किया करते हैं साधु की, अमुक की, अमुक की। उसका विरोध आया है। अरे! ऐसा करके क्या काम? बापू! तेरा करने का यह काम है।

मुनि... जब शुभाशुभभाव को, सुख-दुःख का तुमने निषेध किया, वह आचरण ही नहीं है, वह आत्मा का आचरण नहीं है। होता है, आता है परन्तु वह आत्मा-आचरण नहीं है। आहाहा! तो नहीं है तो उन्हें करना क्या? कि **मुनि कहीं अशरण नहीं हैं; (कारण कि) जब निष्कर्म अवस्था (निवृत्ति-अवस्था) वर्तती है,...** आहाहा! शुभ-अशुभ विकल्प... वह निवृत्ति प्रवर्तती है। शुभ-अशुभ विकल्प है, वह प्रवृत्ति है। उस प्रवृत्ति की अपेक्षा से निष्कर्म निवृत्ति है और आत्मा की अपेक्षा से निष्कर्म भी प्रवृत्ति है। पर्याय परिणमती है न। आहाहा! समझ में आया? यह पुण्य और पाप दोनों भाव प्रवृत्ति है। उस प्रवृत्ति को निवृत्ति से... आहाहा! उसे कोई शरण नहीं, ऐसा नहीं है।

निष्कर्म अवस्था (निवृत्ति-अवस्था) वर्तती है,... निवृत्ति की अपेक्षा, शुभाशुभभाव से निवृत्ति। बाकी है तो आत्मा में परिणति। वीतरागी परिणति है। शुभाशुभ का निषेध हुआ, तब आत्मा के अवलम्बन से वीतरागी परिणति, वह शरण है। है वीतरागी परिणति, वीतरागी पर्याय। आहाहा! समझ में आया? वीतरागी पर्याय ध्येय नहीं है। शरण है, क्योंकि त्रिकाली के आश्रय से होती है और निर्विकारी पर्याय उत्पन्न होती है, इसलिए ऐसा कहा है। **निष्कर्म अवस्था (निवृत्ति-अवस्था) वर्तती है, तब ज्ञान में आचरण करता हुआ—रमण करता हुआ—परिणमन करता हुआ ज्ञान ही उन मुनियों को शरण है;...** देखो! यह पर्याय की बात की, हों! त्रिकाली ज्ञायक वस्तु के आश्रय से शुभाशुभ से निवृत्त हुआ, तब अन्तर प्रवृत्त हुआ। शुभाशुभ की अपेक्षा छोड़कर प्रवृत्त हुआ। अर्थात् उससे निवृत्ति हुई और अपने में शुद्ध की प्रवृत्ति हुई। आहाहा! यह **उन मुनियों को शरण है;...** आहाहा! क्या?

निष्कर्म अवस्था (निवृत्ति-अवस्था) वर्तती है, तब ज्ञान... अर्थात् आत्मा में **आचरण करता हुआ—रमण करता हुआ—परिणमन करता हुआ ज्ञान...** ज्ञान अर्थात्

आत्मा। आत्मा रमता हुआ, अपने में रमण करता हुआ... आचरण करता हुआ... आहाहा! यह तो समयसार के पुण्य-पाप के अधिकार का कलश है। यह पर से निवर्तता हुआ। **ज्ञान में आचरण करता हुआ...** यह प्रवृत्ति हुई। **रमण करता हुआ—परिणमन करता हुआ ज्ञान ही...** आत्मा को **मुनियों को शरण है;...** यह ज्ञान ही—परिणति, वह आत्मा को शरण है। आहाहा! शुभाशुभ छूटे, इसलिए अब उसे कुछ रहा नहीं, ऐसा नहीं है। उसके स्थान में शुद्धता आयी है। भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप अभेद है, उसका अवलम्बन लेने से पर्याय में निष्कर्म अवस्थारूपी शुभाशुभ की अपेक्षा से निवृत्ति है और द्रव्य की अपेक्षा से शुभपरिणति है। शुभपरिणतिरूप वह प्रवृत्ति है। आहाहा! मुनियों को भी प्रवृत्ति है। आहाहा! है न?

मुनियों को शरण है;... आहाहा! धीमे से, शान्ति से पढ़े, विचार करे तो (समझ में आये ऐसा है)। एकदम वह एक व्यक्ति कहता था कि आप समयसार की बहुत महिमा करते हो। पन्द्रह दिन में पढ़ गया हूँ। उसमें क्या है? भाई! उसकी एक लाईन में क्या है, यह तेरे पढ़ने में आवे, ऐसा नहीं है, बापू! अरे! ऐसा अवसर, समय-समय चला जाता है। आहाहा! टाईम आवे, देखो न, एक के बाद एक विचार चलते जाते हैं। आहाहा! हो गया। इस जगत में अस्ति थी, बाहर में दिखती थी, वह बन्द हो गयी। कहीं अन्यत्र जाकर अवतरित हुआ। आहाहा! क्योंकि वह तो (आत्मा तो) अनादि-अनन्त है। यहाँ से छूटकर वह कहीं किसी जगह जायेगा, वहाँ भी प्रवृत्ति तो है ही क्योंकि यहाँ प्रवृत्ति को अपनी माना है, वहाँ भी प्रवृत्ति में ही स्वयं एकमेक होकर रहेगा। आहाहा!

इस शुभाशुभ प्रवृत्ति से भिन्न भगवान निवृत्तस्वरूप है। उसे तो पहिचाना नहीं। उसे तो आँगन में लाया नहीं। पर्याय में उसे लाया नहीं। पर्याय में राग, पुण्य, दया को लाया है। आहाहा! ऐसी वस्तु है। आहाहा! देवीलालजी! थोड़ा कठिन लगे, बापू! परन्तु यह वस्तु तो ऐसी है। इसकी श्रद्धा तो पक्की करना चाहिए। विकल्प की श्रद्धा में पक्का करना चाहिए। ऊपर से इन्द्र उतरे तो भी बदले नहीं, ऐसा पहले निर्णय पक्का करना चाहिए। पश्चात् विकल्प तोड़कर अन्दर में जाना, वही रास्ता सरल है। आहाहा! परन्तु अभी विकल्प की श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता। अरे! प्रभु! तेरी शरण की बात है न, नाथ! तुझे तेरी शरण बताते हैं तो शरण अन्दर है। शुभाशुभ छूट जाए तो शरणरहित हो गया। करने का यह था, वही करने का था और वही करने का चला गया, इसलिए कुछ करने का रहा नहीं,

शुभाशुभ छुड़ाये, वही करने का था। आहाहा! वह करने का था और निषेध किया, अब उसे रहा क्या? बापू! वह शुभाशुभभाव करता था, उस स्थान में शुद्धता को करता है। उन शुभाशुभ से निवृत्ति लेकर और परिणति में शुद्धता, निर्मलता वीतरागता को करता है। उस वीतरागता की शरण है। वह निष्कर्म हुआ अर्थात् कुछ शरणरहित हो गया और शुभभाव था, वह उसे शरण था। बहुत से (कहते हैं) शुभभाव में भगवान का लक्ष्य जाता है, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का प्रेम होता है, इसलिए कुछ उसमें शरण था। अब वह गया, इसलिए अब मुझे क्या रहा? तुझे रहा बड़ा भगवान। आहाहा! ऐसी बात है। पागल-पागल की बातें तो आयी, बापू! कोई पागल कहे, गहला कहे, पागल कहे, नाथ! मार्ग तो यह है, बापू! आहाहा!

यहाँ से जाना है, बापू! देह तो छूटकर आया। ५०-६० वर्ष हुए, इतना कुछ रहना नहीं है। अब जाएगा कहाँ? उसका क्या किया? आहाहा! यह शुभाशुभ प्रवृत्ति जो सुख-दु:खरूप है, उसमें ही रुक गया तो यह तूने क्या किया? जो अनादि संसार में करता आता है, यह वह किया। आहाहा! और तूने क्या किया? उनसे निवृत्ति लेकर स्वरूप में प्रवृत्ति करना, यह करना है, आहाहा! शुभाशुभ प्रवृत्ति छोड़कर **ज्ञान में आचरण करता हुआ...** ज्ञान अर्थात् आत्मा, स्वभाव। ज्ञानस्वरूप है, उसमें आचरण करता हुआ, हों! ज्ञान अर्थात् शास्त्र का जानना, वह नहीं। शास्त्र का जानना और उसमें रमण करना, वह नहीं। आहाहा! आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञायकस्वरूप है, ज्ञायकस्वरूप है ऐसे **ज्ञान में आचरण करता हुआ—रमण करता हुआ—परिणमन करता हुआ ज्ञान ही उन मुनियों को शरण है;...** आत्मा को वह एक ही शरण है। आहाहा! अरिहन्ता शरणम्, सिद्धा शरणम् - यह सब व्यवहार है। यह तो कहते हैं। आहाहा!

मांगलिक में आया वह व्यवहार है। केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणम्, यह वीतरागी पर्याय आयी। परन्तु वह वीतरागी पर्याय प्रगट कैसे होती है? कि अभेददृष्टि से वह प्रगट होती है। आहाहा! वीतराग कथित धर्मपर्याय, पर्याय के लक्ष्य से पर्याय नहीं होती। आहाहा! तो चारों ही मांगलिक उड़ गये। अरिहन्ता, सिद्धा, साहू, केवलीपण्णत्तो धम्मो। उन केवली ने कहा हुआ धर्म वीतराग। वह वीतराग, वह शरण है - ऐसा कहना है। कैसे उत्पन्न होता है? इस शुभाशुभ से निवृत्ति करके अन्दर में अवलम्बन ले तो उत्पन्न होता है।

आहाहा! भगवान का शरण किया करे, णमो अरिहन्ताणं.. णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं।

अभी एक पत्र किसी का आया था। ऐसा कहे मैंने कितनी बार हजार बार, दस हजार बार, लाख बार ओमकार गिना। उसका क्या परिणाम होगा? महाराज! ऐसा पूछा था। बहुत बड़ा सफेद पर्वत दिखता है, उसमें दिगम्बर मुनि दिखते हैं, ऐसा किसी का प्रश्न है। यहाँ कौन लिखता है और कौन उत्तर देता है? किसी को खेद भी होता है। उसको खेद हुआ है। क्या कहलाता है, सोलापुर का पण्डित।

मुमुक्षु : वर्धमान पार्श्वनाथ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्द्धमान... वह है ऐसे अनुकूल लौकिक साधु। उन्हें यहाँ से मैं यहाँ अमुक के लिये सहायता दूँ, ऐसा लिखा था। उसका उत्तर भी नहीं? ऐसा कहे मैं तुमको मिला हूँ। उत्तर कौन दे? यह पत्र, लिखना, उत्तर लिखना। यहाँ यह कहाँ फुरसत है? बापू! उसने खेद बताया है। उत्तर भी लिखना नहीं? सहायक तो न हुए। ऐसा कहता है। अरे! प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : भूतबलि शास्त्री।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूतबलि... पहले क्या कहा था? वर्धमान, वह तो विरोध में। वह नहीं। यह तो मूलबिद्री का। यह सत्य बात। उसका पत्र था।

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन। इस **ज्ञान में लीन होते हुए परम अमृत का स्वयं अनुभवन करते हैं...** वह प्रवृत्तिरहित नहीं। यह पुण्य और पाप की प्रवृत्तिरहित हुआ, परन्तु अमृत को पीने की प्रवृत्ति से खाली नहीं है। आहाहा! इस शुभाशुभभाव में सुख-दुःख को पीता था। आहाहा! शुभाशुभभाव में सुख-दुःख को अनुभव करता था। वह अब खाली नहीं है। आहाहा! **वह आत्मा में लीन होते हुए परम अमृत को...** परम अमृत। जो अमृतस्वरूप है, वह कभी मरता नहीं, किसी को मारता नहीं, किसी से मरता नहीं। आहाहा! ऐसा अ-मृत। आहाहा! ऐसा अमृतस्वभाव उसका स्वभाव है। वह **अमृत को स्वयं...** पीता है। पीता है अर्थात् **अनुभवन करते हैं...**

मुनिराज शुभ-अशुभराग छोड़कर... आहाहा! अभी ऐसा कहने में आता है कि अभी तो (शुभ) योग ही होता है। श्रुतसागर हैं, शान्तिसागर के पटशिष्य। वे कहते हैं अभी शुभभाव ही होता है। सब साधु हुए, वे शुभभाव में ही थे, ऐसा कहते हैं। शान्तिसागर से

लेकर अभी। अरे! प्रभु! शुभभाव, वह कोई वस्तु है। आहाहा! वह तो अनादि संसार किया है, वह है। कठिन काम, बापू!

वह **परम अमृत का स्वयं अनुभवन करते हैं...** ऐसा है न? शब्द ऐसा है न? आहाहा! '**स्वयं विन्दन्त्येते परम-ममृतं तत्र निरता:**' स्वयं अमृत को पीते हैं। आहाहा! समयसार की पाँचवीं गाथा में आया है न? प्रचुर स्वसंवेदन, वह मेरा वैभव है। मुनि का वैभव यह बहुत शिष्य हुए, बहुत शास्त्र बनाये, अमुक बनाया, यह उनका वैभव नहीं। यह तो पर का (वैभव) है। आहाहा! बहुत समझाये और बहुत साधु हुए, शिष्य हुए। मेरा यह वैभव नहीं। मेरा वैभव तो स्वसंवेदन, प्रचुर स्वसंवेदन है। क्योंकि संवेदन तो आंशिक अनुभूति तो चौथे गुणस्थान से होती है परन्तु यह तो मुनि हैं, इसलिए प्रचुर स्वसंवेदन है। बहुत ही स्व आत्मा का वेदन है। आहाहा! उस मेरे निज वैभव से समयसार को मैं कहूँगा, ऐसा कहा है। आहाहा! ऐसे मुनिराज ऐसे थे। तब यहाँ विरोध था। श्वेताम्बर पन्थ निकल गया था। सौ वर्ष हो गये, विवाद हुआ गिरनार में बड़ा (विवाद हुआ)। आहाहा! वह कहे पहले मेरी ध्वजा चढ़ेगी, वह कहे पहले मेरी ध्वजा चढ़ेगी। वे पुण्यशाली आत्मा, पवित्रता और पुण्य दोनों इकट्ठे थे। अम्बादेवी बोली कि दिगम्बर धर्म पहला है। कुन्दकुन्दाचार्य के समय में चर्चा हुई थी। प्राचीन है। आहाहा!

श्लोक-१३४

और (इस ९९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(मालिनी)

अथ नियतमनोवाक्कायकृत्स्नेन्द्रियेच्छो,
भव-जलधि-समुत्थं मोहयाद:समूहम्।
कनक-युवति-वाञ्छा-मप्यहं सर्वशक्त्या,
प्रबल-तर-विशुद्ध-ध्यानमय्या त्यजामि।।१३४।।

(वीरछन्द)

मन-वच-तन इन्द्रिय सम्बन्धी इच्छा को संयमित किया।
भवदधि में उत्पन्न मोह जलचर समूह को त्याग दिया॥
कनक कामिनी की वाञ्छा को अति विशुद्ध निज भावों से।
त्याग करूँ इन सब भावों को प्रबल ध्यानमय शक्ति से॥१३४॥

[श्लोकार्थः] मन-वचन-काया सम्बन्धी और समस्त इन्द्रियों सम्बन्धी इच्छा जिसने *नियन्त्रण किया है, ऐसा मैं अब भवसागर में उत्पन्न होनेवाले मोहरूपी जलचर प्राणियों के समूह को तथा कनक और युवती की वाँछा को अतिप्रबल-विशुद्ध-ध्यानमयी सर्व शक्ति से छोड़ता हूँ॥१३४॥

श्लोक -१३४ पर प्रवचन

और (इस ९९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

अथ नियतमनोवाक्कायकृत्स्नेन्द्रियेच्छो,
भव-जलधि-समुत्थं मोहयादःसमूहम्।
कनक-युवति-वाञ्छा-मप्यहं सर्वशक्त्या,
प्रबल-तर-विशुद्ध-ध्यानमय्या त्यजामि॥१३४॥

आहाहा! अब मुनिराज स्वयं कहते हैं। टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव। आहाहा! पंचम काल के साधु, अभी तो उन्हें ९०० वर्ष हुए। वे जैन सम्प्रदाय को सम्बोधन करते हैं। अभी ऐसा नहीं होता। ऐसा कहते हैं, वे स्वयं सम्बोधते हैं? सभा में ऐसा कहते हैं।

मन-वचन-काया सम्बन्धी और समस्त इन्द्रियों सम्बन्धी इच्छा जिसने नियन्त्रण किया है,... आहाहा! जिसने मन-वचन-काया को रोका है और **समस्त इन्द्रियों सम्बन्धी इच्छा का...** इच्छा का नियन्त्रण-संयमन किया है। इच्छा का संयम किया है अर्थात् इच्छाएँ उड़ा दी हैं। आहाहा! यह मुनिपना। **ऐसा मैं...** वापस ऐसा कहा। देखा? **मन-वचन-काया**

* नियन्त्रण करना=संयमन करना; अधिकार में लेना।

सम्बन्धी और समस्त इन्द्रियों सम्बन्धी इच्छा जिसने नियन्त्रण किया है, ऐसा मैं अब भवसागर में उत्पन्न होनेवाले... भवसागर परिभ्रमण में उत्पन्न होनेवाले **मोहरूपी जलचर प्राणियों के समूह को...** मोहरूपी जलचर, संसाररूपी समुद्र में रहनेवाले मोहरूपी जलचर रहनेवाले। आहाहा! मिथ्यात्व और राग-द्वेष यह मोहरूपी जलचर है। आहाहा!

मोहरूपी जलचर प्राणियों के समूह को तथा कनक और युवती की वाँछा को... पाठ में था सही न! **कनक और युवती की वाँछा को अतिप्रबल-विशुद्ध-ध्यानमयी...** आहाहा! **अतिप्रबल-विशुद्ध-ध्यानमयी सर्व शक्ति से छोड़ता हूँ।** आहाहा! **अतिप्रबल-विशुद्ध-ध्यानमयी...** देखा? ध्यानमयी पर्याय ली है न? वह राग की पर्याय छूट गयी न? यह निर्मल **अतिप्रबल-विशुद्ध-ध्यानमयी सर्व शक्ति से...** आत्मा के अनन्त-अनन्त बल की / वीर्य की शक्ति से उसे मैं **छोड़ता हूँ।** और स्वरूप की रचना करता हूँ। आहाहा! वीर्य का गुण यह है कि उसे (इच्छा को) छोड़ना और स्वरूप की रचना, अनन्त गुण की पर्याय में रचना करना, वह वीर्यगुण का स्वभाव है। यह कहते हैं कि मैं राग को छोड़ता हूँ और सर्व शक्ति के प्रबल से और विशुद्ध ध्यान में रहता हूँ। आहाहा! देखो! विशुद्ध शब्द प्रयोग किया है। बहुत जगह विशुद्ध (शब्द) शुभभाव में प्रयोग होता है। विशुद्ध शुभभाव में प्रयोग होता है, शुद्ध में प्रयोग होता है। इसलिए किस जगह क्या व्याख्या है, यह जानना चाहिए। शुभभाव को भी विशुद्ध कहते हैं। यहाँ वि-शुद्ध अर्थात् विशेष शुद्ध। उसमें विशुद्ध अर्थात् अशुभकर्म, अशुभभाव जो है, उससे जरा हटा है, इसलिए विशुद्ध शुभभाव है। है बन्ध का कारण, जहर; उसे विशुद्ध और इसे भी विशुद्ध कहते हैं।

अतिप्रबल-विशुद्ध-ध्यानमयी सर्व शक्ति से... आहाहा! पंचम काल में ध्यान होता नहीं न! पंचम काल में ध्यान नहीं होता, शुभयोग ही होता है, ऐसा (आजकल) कहते हैं। आहाहा! अरे प्रभु! तू इसकी हाँ तो कर कि धर्मध्यान होता है। आहाहा! **ध्यानमयी सर्व शक्ति से...** मेरी शक्ति का जितना जोर है, उससे **छोड़ता हूँ।** पर को मैं छोड़ता हूँ। आहाहा! प्रकाश है, इससे जीव आते हैं। १३४ कलश हुआ न।

गाथा-१००

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे।।१००।।

आत्मा खलु मम ज्ञाने आत्मा मे दर्शने चरित्रे च।
आत्मा प्रत्याख्याने आत्मा मे सम्वरे योगे।।१००।।

अत्र सर्वत्रात्मोपादेय इत्युक्तः। अनाद्यनिधनामूर्तातीन्द्रियस्वभावशुद्धसहजसौख्यात्मा ह्यात्मा। स खलु सहजशुद्धज्ञानचेतनापरिणतस्य मम सम्यग्ज्ञाने च, स च प्राञ्चितपरम-पञ्चमगतिप्राप्तिहेतुभूतपञ्चमभावभावनापरिणतस्य मम सहजसम्यग्दर्शनविषये च, साक्षा-न्निर्वाणप्राप्त्युपायस्वस्वरूपाविचलस्थितिरूपसहजपरमचारित्रपरिणतेर्मम सहजचारित्रेऽपि स परमात्मा सदा सन्निहितश्च, स चात्मा सदासन्नस्थः शुभाशुभपुण्यपापसुखदुःखानां षण्णां सकलसन्न्यासात्मकनिश्चयप्रत्याख्याने च मम भेदविज्ञानिनः परद्रव्यपराङ्मुखस्य पञ्चेन्द्रिय-प्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहस्य, मम सहजवैराग्यप्रासादशिखरशिखामणेः स्वरूपगुप्तस्य पापाटवीपावकस्य शुभाशुभसम्वरयोश्च, अशुभोपयोगपराङ्मुखस्य शुभोपयोगेऽप्युदासीन-परस्य साक्षाच्छुद्धोपयोगाभिमुखस्य मम परमागममकरन्दनिष्यन्दिमुखपद्मप्रभस्य शुद्धोपयोगेऽपि च स परमात्मा सनातनस्वभावत्वात्तिष्ठति।

तथा चोक्तमेकत्वसप्ततौ ह्न

(अनुष्टुप्)

तदेकं परमं ज्ञानं तदेकं शुचि दर्शनम्।
चारित्रं च तदेकं स्यात् तदेकं निर्मलं तपः।।
नमस्यं च तदेवैकं तदेवैकं च मङ्गलम्।
उत्तमं च तदेवैकं तदेव शरणं सताम्।।

आचारश्च तदेवैकं तदेवावश्यकक्रिया।
स्वाध्यायस्तु तदेवैक-मप्रमत्तस्य योगिनः।।

तथाहि ह्न

मम ज्ञान में है आतमा, दर्शन चरित में आतमा।
है और प्रत्याख्यान, संवर, योग में भी आतमा॥१००॥

अन्वयार्थ : [खलु] वास्तव में [मम ज्ञाने] मेरे ज्ञान में [आत्मा] आत्मा है, [मे दर्शने] मेरे दर्शन में [च] तथा [चरित्रे] चारित्र में [आत्मा] आत्मा है, [प्रत्याख्याने] मेरे प्रत्याख्यान में [आत्मा] आत्मा है, [मे संवरे योगे] मेरे संवर में तथा योग में (-शुद्धोपयोग में) [आत्मा] आत्मा है।

टीका : यहाँ (-इस गाथा में), सर्वत्र आत्मा उपादेय (-ग्रहण करनेयोग्य) है ऐसा कहा है।

आत्मा वास्तव में अनादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाला, शुद्ध, सहज-सौख्यात्मक है। सहज शुद्ध ज्ञानचेतनारूप से परिणमित जो मैं, उसके (अर्थात् मेरे) सम्यग्ज्ञान में सचमुच वह (आत्मा) है; पूजित परम पंचमगति की प्राप्ति के हेतुभूत पंचमभाव की भावनारूप से परिणमित जो मैं, उसके सहज सम्यग्दर्शनविषय में (अर्थात् मेरे सहज सम्यग्दर्शन में) वह (आत्मा) है; साक्षात् निर्वाण प्राप्ति के उपायभूत, निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज-परमचारित्रपरिणतिवाला जो मैं, उसके (अर्थात् मेरे) सहज चारित्र में भी वह परमात्मा सदा सन्निहित (-निकट) है; भेदविज्ञानी, परद्रव्य से पराङ्मुख तथा पंचेन्द्रिय के विस्तार रहित देहमात्रपरिग्रहवाला जो मैं, उसके निश्चय-प्रत्याख्यान में—कि जो (निश्चयप्रत्याख्यान), शुभ, अशुभ, पुण्य, पाप, सुख और दुःख इन छह के सकल संन्यासस्वरूप है (अर्थात् इन छह वस्तुओं के सम्पूर्ण त्यागस्वरूप है) उसमें—वह आत्मा सदा आसन्न (-निकट) विद्यमान है; सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि, स्वरूपगुप्त और पापरूपी अटवी को जलाने के लिए पावक समान जो मैं, उसके शुभाशुभसंवर में (वह परमात्मा है), तथा अशुभोपयोग से पराङ्मुख, शुभोपयोग के प्रति भी उदासीनतावाला और साक्षात् शुद्धोपयोग के सम्मुख जो मैं—परमागमरूपी पुष्परस जिसके मुख से झरता है, ऐसा

पद्मप्रभ—उसके शुद्धोपयोग में भी वह परमात्मा विद्यमान है कारण कि वह (परमात्मा) सनातन स्वभाववाला है।

इस प्रकार एकत्वसप्तति में (-श्री पद्मनन्दि-आचार्यवरकृत पद्मनन्दिपंच -विंशतिका के एकत्वसप्तति नामक अधिकार में ३९, ४० तथा ४१वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

[श्लोकार्थः] वही एक (-वह चैतन्यज्योति ही एक) परम ज्ञान है, वही एक पवित्र दर्शन है, वही एक पवित्र है तथा वही एक निर्मल तप है।

(वीरछन्द)

वही एक ही परम ज्ञान है वह ही है पावन दर्शन।
वही एक चारित्ररूप है वही एक है तप निर्मल॥

[श्लोकार्थः] सत्पुरुषों को वही एक नमस्कारयोग्य है, वही एक मंगल है, वही एक उत्तम है तथा वही एक शरण है।

(वीरछन्द)

सत्पुरुषों को वन्दनीय है वही एक है मंगलरूप।
वही एक उत्तम स्वरूप है वही एक है शरण स्वरूप॥

[श्लोकार्थः] अप्रमत्त योगी को वही एक आचार है, वही एक आवश्यक क्रिया है तथा वही एक स्वाध्याय है।

अप्रमत्त योगी को है वह, एकमात्र आचार स्वरूप।
वह आवश्यक क्रिया एक ही, वही एक स्वाध्याय स्वरूप॥

गाथा - १०० पर प्रवचन

गाथा १००। १००वीं गाथा आयी। आहाहा! यह तो बहुत बारम्बार सब जगह है। समयसार में भी है।

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे।।१००।।

समयसार के बन्ध अधिकार में है।

मम ज्ञान में है आतमा, दर्शन चरित में आतमा।
है और प्रत्याख्यान, संवर, योग में भी आतमा॥१००॥

आहाहा! **यहाँ (-इस गाथा में), सर्वत्र आत्मा उपादेय (-ग्रहण करनेयोग्य) है...** आहाहा! सर्वत्र आत्मा ही आदरणीय है; इसके अतिरिक्त कोई आदरणीय नहीं है। विकल्पमात्र छोड़ने योग्य है, भाई! आहाहा! इसके लिये कोई सरल-हल्का साधन होगा या नहीं? हल्का साधन ही यह है। पर से भिन्न करना, यह धर्म का साधन है। आहाहा! यह कहते हैं।

मम ज्ञान में है आतमा, दर्शन चरित में आतमा।
है और प्रत्याख्यान, संवर, योग में भी आतमा॥१००॥

आहाहा! **यहाँ (-इस गाथा में), सर्वत्र आत्मा उपादेय (-ग्रहण करनेयोग्य) है...** आत्मा ही अनुभव करनेयोग्य है, ऐसा विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)